Chapter नौ

मार्कण्डेय ऋषि को भगवान् की मायाशक्ति के दर्शन

इस अध्याय में मार्कण्डेय ऋषि द्वारा भगवान् की मायाशक्ति का दर्शन करने का वर्णन हुआ है।

श्री मार्कण्डेय द्वारा की गई स्तुतियों से प्रसन्न होकर, भगवान् ने उनसे वर माँगने को कहा तो ऋषि ने कहा कि वे भगवान् की मायाशक्ति का दर्शन करना चाहते हैं। मार्कण्डेय के समक्ष नर-नारायण रूप में उपस्थित श्री हरि ने उत्तर दिया, ''तथास्तु''। और तब वे बदरिकाश्रम चले गये।

एक दिन जब श्री मार्कण्डेय सन्ध्याकालीन स्तुति कर रहे थे, तो सहसा प्रलय के जल ने तीनों लोकों को आप्लावित कर लिया। वे दीर्घकाल तक अकेले ही इस जल में बड़ी मुश्किल से इधर-उधर विचरण करते रहे, तभी उन्हें एक बरगद का वृक्ष मिला। उस वृक्ष के एक पत्ते पर एक बालक लेटा था, जो मनोहारी तेज से दमक रहा था। ज्योंही मार्कण्डेय इस पत्ते की ओर लपके कि वे बालक के श्वास द्वारा आकृष्ट हो गये और एक मच्छर की तरह उसके शरीर के भीतर चले गये।

बालक के शरीर के भीतर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रलयकाल के पहले जैसा देख कर मार्कण्डेय चकित थे। क्षण-भर बाद ऋषि शिशु के नि:श्वास द्वारा बाहर प्रलय के सागर में पुन: फेंक दिए गए। तब यह देख कर कि उस पत्ते पर पड़ा बालक वास्तव में श्री हरि हैं, जो उन्हीं के हृदय में स्थित दिव्य भगवान् हैं, तो श्री मार्कण्डेय ने उनका आलिंगन करना चाहा। किन्तु तभी योगेश्वर भगवान् हरि अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् प्रलय का जल भी अन्तर्धान हो गया और श्री मार्कण्डेय ने अपने को पहले की तरह अपने आश्रम में पाया।

सूत उवाच
संस्तुतो भगवानित्थं मार्कण्डेयेन धीमता ।
नारायणो नरसख: प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूत: उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; संस्तुत:—भलीभाँति स्तुति किये जाने पर; भगवान्—भगवान्; इत्थम्—इस तरह; मार्कण्डेयेन—मार्कण्डेय द्वारा; धी-मता—बुद्धिमान मुनि; नारायण:—नारायण; नर-सख:—नर के मित्र; प्रीत:—प्रसन्न; आह—बोले; भृगु-उद्वहम्—अत्यन्त प्रसिद्ध भृगुवंशी से।

सूत गोस्वामी ने कहा : नर के मित्र, भगवान् नारायण, बुद्धिमान मुनि मार्कण्डेय द्वारा की गई उपयुक्त स्तुति से तुष्ट हो गये। अत: वे उन श्रेष्ठ भृगवंशी से बोले।

श्रीभगवानुवाच
भो भो ब्रह्मर्षिवर्योऽसि सिद्ध आत्मसमाधिना ।
मयि भक्त्यानपायिन्या तप:स्वाध्यायसंयमै: ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; भो: भो:—हे मुनि; ब्रह्म-ऋषि—समस्त विद्वान ब्राह्मणों में; वर्य:—श्रेष्ठ; असि—हो; सिद्ध:—सिद्ध; आत्म-समाधिना—आत्मा पर स्थिर ध्यान से; मयि—मुझमें; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; अनपायिन्या—अविचल; तप:—तपस्या; स्वाध्याय—वेदाध्ययन; संयमै:—तथा विधि-विधानों द्वारा।

भगवान् ने कहा : हे मार्कण्डेय, तुम सचमुच ही समस्त विद्वान ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हो। तुमने परमात्मा पर ध्यान स्थिर करके तथा अपनी अविचल भक्ति, अपनी तपस्या, अपने वेदाध्ययन एवं विधि-विधानों के प्रति अपनी तत्परता मुझ पर केन्द्रित करते हुए, अपने जीवन को सफल बना लिया है।

वयं ते परितुष्टाः स्म त्वद्बृहद्व्रतचर्यया ।
वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदोऽस्मि त्वदीप्सितम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; ते—तुमसे; परितुष्टाः—पूर्णतया तुष्ट; स्म—हो चुके हैं; त्वत्—तुम्हारा; बृहत्-व्रत—आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की; चर्यया—सम्पन्नता द्वारा; वरम्—वर; प्रतीच्छ—चुनो; भद्रम्—कल्याण हो; ते—तुम्हारा; वर-दः—वर देने वाले; अस्मि—मैं हूँ; त्वत्-ईप्सितम्—आपके द्वारा चाहा हुआ।

हम तुम्हारे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत से पूर्णतया तुष्ट हैं। अब जो वर चाहो, चुन लो क्योंकि मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर सकता हूँ। तुम समस्त सौभाग्य का भोग करो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि भगवान् ने इस श्लोक के प्रारम्भ में बहुवचन ''हम'' का प्रयोग किया है क्योंकि वे अपना उल्लेख शिव तथा उमा के साथ-साथ कर रहे थे जिनकी स्तुति बाद में मार्कण्डेय द्वारा की जायेगी। तब भगवान् ने एकवचन ''मैं'' का प्रयोग किया क्योंकि अन्ततः, एकमात्र भगवान् नारायण (कृष्ण) ही जीवन की सर्वोच्च सिद्धि—शाश्वत कृष्णभावनामृत—प्रदान कर सकते हैं।

श्रीऋषिरुवाच
जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत ।
वरेणैतावतालं नो यद्भवान्समदृश्यत ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

श्री-ऋषिः उवाच—ऋषि ने कहा; जितम्—विजयी हों; ते—आप; देव-देव-ईश—हे ईशों के भी ईश; प्रपन्न—शरणागत; आर्ति-हर—हे कष्टों को दूर करने वाले; अच्युत—हे अच्युत; वरेण—वर से; एतावता—इतना; अलम्—पर्याप्त; नः—हमारे द्वारा; यत्—जो; भवान्—आपने; समदृश्यत—देखे जा चुके।

ऋषि ने कहा : हे देव-देवेश, आपकी जय हो। हे अच्युत, आप उन भक्तों का सारा कष्ट दूर कर देते हैं, जो आपके शरणागत हैं। आपने मुझे अपना दर्शन करने की अनुमति दी, यही मेरे द्वारा चाहा गया वर है।

गृहीत्वाजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् ।
मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षिगोचरः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

गृहीत्वा—पाकर; अज-आदयः—ब्रह्मा तथा अन्य; यस्य—जिसके; श्रीमत्—सर्व ऐश्वर्यवान्; पाद-अब्ज—चरणकमलों का; दर्शनम्—दर्शन; मनसा—मन से; योग-पक्वेन—योग में परिपक्व; सः—वह; भवान्—आप; मे—मेरी; अक्षि—आँखों को; गो-चरः—दृश्य।

ब्रह्मा जैसे देवताओं ने आपके सुन्दर चरणकमलों का दर्शन करके ही उच्च पद प्राप्त किया क्योंकि उनके मन योगाभ्यास से परिपक्व हो चुके थे। और हे प्रभु, अब आप मेरे समक्ष साक्षात् प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : मार्कण्डेय ऋषि इंगित करते हैं कि ब्रह्मा जैसे उच्च देवताओं ने भगवान् के

चरणकमलों का दर्शन करके ही उच्च पद प्राप्त किया, तो भी मार्कण्डेय ऋषि भगवान् कृष्ण का अब पूरा शरीर देख पा रहे थे। इस तरह वे अपने सौभाग्य की हद की कल्पना तक नहीं कर पाये।

अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे ।
द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अथ अपि—तो भी; अम्बुज-पत्र—कमल की पंखड़ियों जैसी; अक्ष—आँखों वाले हे; पुण्य-श्लोक—प्रसिद्ध पुरुषों के; शिखामणे—हे शिरोमणि; द्रक्ष्ये—मैं देखना चाहता हूँ; मायाम्—मायाशक्ति को; यया—जिससे; लोकः—सम्पूर्ण जगत; स-पालः—अधिष्ठाता देवताओं सहित; वेद—मानता है; सत्—परम सत्य का; भिदाम्—भौतिक अन्तर।

हे कमलनयन, हे विख्यात पुरुषों के शिरोमणि, यद्यपि मैं मात्र आपका दर्शन करके तुष्ट हूँ किन्तु मैं आपकी मायाशक्ति को देखना चाहता हूँ जिसके प्रभाव से सम्पूर्ण जगत तथा उसके अधिष्ठाता देवता सत्य को भौतिक दृष्टि से विविधतापूर्ण मानते हैं।

तात्पर्य : बद्धजीव भौतिक जगत को स्वतंत्र पृथक् जीवों से बना हुआ मानता है। वस्तुतः सारी वस्तुएँ भगवान् की शक्तियाँ होने से एक में मिली हुई हैं। मार्कण्डेय ऋषि यह देखने के लिए उत्सुक हैं कि वह कौन-सी विधि है, जिससे भगवान् की मोहिनी शक्ति *माया,* जीवों को मोह में डाल देती है।

सूत उवाच
इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान्मुने ।
तथेति स स्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इन शब्दों द्वारा; ईडितः—स्तुति किये गये; अर्चितः—पूजित; कामम्—संतोषजनक रूप से; ऋषिणा—मार्कण्डेय ऋषि द्वारा; भगवान्—भगवान्; मुने—हे विज्ञ शौनक; तथा इति—तथास्तु, ऐसा ही हो; सः—वह; स्मयन्—मुसकाते हुए; प्रागात्—चले गये; बदरी-आश्रमम्—बदरिकाश्रम; ईश्वरः—भगवान्।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे विज्ञ शौनक, मार्कण्डेय की स्तुति तथा पूजा से इस तरह तुष्ट हुए भगवान् ने हँसते हुए उत्तर दिया ''तथास्तु'' और तब बदरिकाश्रम स्थित अपनी कुटिया चले गये।

तात्पर्य : इस श्लोक में *भगवान्* तथा *ईश्वर* शब्द परमेश्वर के नर तथा नारायण दो मुनि अवतारों के द्योतक हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् इसलिए खेदपूर्वक हँसे क्योंकि वे चाहते हैं कि उनके भक्त उनकी मायाशक्ति से दूर रहते जाँए। भगवान् की मायाशक्ति देखने की उत्सुकता से कभी कभी पापपूर्ण भौतिक इच्छा उत्पन्न हो सकती है। तो भी, अपने भक्त मार्कण्डेय को प्रसन्न करने के लिए भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली जिस तरह कि कोई पिता, जो अपने पुत्र को किसी हानिप्रद इच्छा को छोड़ने के लिए आश्वस्त नहीं कर पाता, तो वह उसे कुछ कष्ट भोगने देता है, जिससे वह स्वेच्छा से उससे विरत हो सके। इस तरह, यह जानते

हुए कि मार्कण्डेय पर क्या बीतने वाली है, भगवान् अपनी मायाशक्ति दिखाने की तैयारी करते हुए हँसे।

तमेव चिन्तयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः ।
वसन्नग्न्यर्कसोमाम्बुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८ ॥
ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् ।
क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसम्प्लुतः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; एव—निस्सन्देह; चिन्तयन्—सोचते हुए; अर्थम्—लक्ष्य को; ऋषिः—मार्कण्डेय; स्व-आश्रमे—अपनी कुटिया में; एव—निस्सन्देह; सः—वह; वसन्—रहते हुए; अग्नि—अग्नि; अर्क—सूर्य; सोम—चन्द्रमा; अम्बु—जल; भू—पृथ्वी; वायु—हवा; वियत्—बिजली; आत्मसु—तथा अपने हृदय में; ध्यायन्—ध्यान करते हुए; सर्वत्र—सभी परिस्थितियों में; च—तथा; हरिम्—भगवान् हरि को; भाव-द्रव्यैः—मन में कल्पित साज-सामग्री से; अपूजयत्—पूजा की; क्वचित्—कभी; पूजाम्—पूजा; विसस्मार—भूल गया; प्रेम—ईश्वर-प्रेम की; प्रसर—बाढ़ में; सम्प्लुतः—डूब जाने से।

मार्कण्डेय ऋषि, भगवान् की माया का दर्शन करने की इच्छा के विषय में सदैव सोचते हुए, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, जल, पृथ्वी, वायु, बिजली से तथा अपने हृदय में भगवान् का निरन्तर ध्यान करते हुए और अपने मन में कल्पित साज-सामग्री से उनकी पूजा करते हुए, अपने आश्रम (कुटिया) में रहते रहे। किन्तु कभी कभी भगवत्प्रेम की तरंगों से अभिभूत होकर वे नियमित पूजा करना भूल जाते।

तात्पर्य : इन श्लोकों से आभास मिलता है कि मार्कण्डेय ऋषि भगवान् कृष्ण के बहुत बड़े भक्त थे, इसलिए वे भगवान् का दर्शन यह जानने के लिए करना चाहते थे कि भगवान् की शक्ति किस तरह कार्य करती है, न कि किसी भौतिक आकांक्षा की पूर्ति के लिए।

तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः ।
उपासीनस्य सन्ध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तस्य—जब वह; एकदा—एक दिन; भृगु-श्रेष्ठ—हे भृगुवंशियों में सर्वश्रेष्ठ; पुष्पभद्रा-तटे—पुष्पभद्रा नदी के तट पर; मुनेः—मुनि के; उपासीनस्य—पूजा कर रहे थे; सन्ध्यायाम्—दिन की संधि पर; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; वायुः—वायु; अभूत्—चलने लगी; महान्—तेज।

हे ब्राह्मण शौनक, हे भृगुश्रेष्ठ, एक दिन जब मार्कण्डेय पुष्पभद्रा नदी के तट पर संध्याकालीन पूजा कर रहे थे तो सहसा तेज वायु चलने लगी।

तं चण्डशब्दं समुदीरयन्तं
बलाहका अन्वभवन्कराला: ।
अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः

स्वनन्त उच्चैरभि वर्षधाराः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तम्—वह वायु; चण्ड-शब्दम्—भयंकर शब्द; समुदीरयन्तम्—उत्पन्न करता हुआ; बलाहकाः—बादल; अनु—पीछे-पीछे; अभवन्—प्रकट हुए; करालाः—भयानक; अक्ष—पहिये की तरह; स्थविष्ठाः—ठोस; मुमुचुः—छोड़ा; तडिद्भिः—बिजली के साथ; स्वनन्तः—गूँजते; उच्चैः—तेज; अभि—सभी दिशाओं; वर्ष—वर्षा की; धाराः—धारा।

उस वायु ने भयंकर शब्द उत्पन्न किया और अपने साथ भयावने बादल लेती आई जिनके साथ बिजली तथा गर्जना थी और जिन्होंने सभी दिशाओं में गाड़ी के पहियों जितनी भारी मूसलाधार वर्षा की।

ततो व्यदृश्यन्त चतुः समुद्राः
समन्ततः क्ष्मातलमाग्रसन्तः ।
समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्र-
महाभयावर्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; व्यदृश्यन्त—प्रकट हुए; चतुः समुद्रः—चार सागर; समन्ततः—सभी दिशाओं में; क्ष्मा-तलम्—पृथ्वी की सतह पर; आग्रसन्तः—निगलते हुए; समीर—वायु का; वेग—वेग; ऊर्मिभिः—लहरों से; उग्र—भयंकर; नक्र—मगरों से; महा-भय—अत्यन्त भयावह; आवर्त—भँवरों से; गभीर—गम्भीर; घोषाः—शब्द।

तब सभी दिशाओं में चार महासागर प्रकट हो गये जो वायु से उछाली गई लहरों से पृथ्वी की सतह को निगल रहे थे। इन महासागरों में भयानक मगर थे, भयानक भँवरें थीं तथा अमांगलिक-गर्जन हो रहा था।

अन्तर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिः खरैः
शतह्रदाभिरुपतापितं जगत् ।
चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनि-
र्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अन्तः—भीतर से; बहिः—बाहर से; च—तथा; अद्भिः—जल से; अति-द्युभिः—आकाश से भी ऊपर उठती; खरैः—प्रचण्ड (वायु से); शत-ह्रदाभिः—बिजली की चमक से; उपतापितम्—अत्यन्त दुखी; जगत्—ब्रह्माण्ड के सारे निवासी; चतुः-विधम्—चार प्रकार के (उद्भिज, अण्डज, स्वेदज, जरायुज); वीक्ष्य—देख कर; सह—साथ; आत्मना—अपने; मुनिः—मुनि; जल—जल से; आप्लुताम्—आप्लावित; क्ष्माम्—पृथ्वी; विमनाः—उदास; समत्रसत्—डर गया।

ऋषि ने अपने सहित ब्रह्माण्ड के सारे निवासियों को देखा जो तेज वायु, बिजली के वज्रपात तथा आकाश से भी ऊपर तक उठने वाली बड़ी-बड़ी लहरों से भीतर और बाहर से सताये जा रहे थे। ज्योंही सारी पृथ्वी जलमग्न हो गई, वे उदास तथा भयभीत हो उठे।

तात्पर्य : यहाँ पर *चतुर्विधम्* शब्द बद्धजीवों के जन्म के चार स्रोतों—भ्रूण, अण्डे, बीज तथा स्वेद—का सूचक है।

तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः
प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णवः ।
आपूर्यमाणो वरषद्भिरम्बुदैः
क्ष्मामप्यधाद्द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—जब वे; एवम्—इस तरह; उद्वीक्षतः—देख रहे थे; ऊर्मि—लहरें; भीषणः—भयावनी; प्रभञ्जन—अंधड़ से; आघूर्णित—चक्कर काटता; वाः—जल; महा-अर्णवः—महासागर; आपूर्यमानः—भर कर; वरषद्भिः—वर्षा से; अम्बु-दैः—बादलों से; क्ष्माम्—पृथ्वी को; अप्यधात्—ढक लिया; द्वीप—द्वीप; वर्ष—महाद्वीप; अद्रिभिः—पर्वतों को; समम्—एकसाथ।

मार्कण्डेय के देखते-देखते बादल से हो रही वर्षा समुद्र को भरती रही जिससे महासागर के जल ने अंधड़ द्वारा भयानक लहरों के उठने से पृथ्वी के द्वीपों, पर्वतों तथा महाद्वीपों को ढक लिया।

सक्ष्मान्तरिक्षं सदिवं सभागणं
त्रैलोक्यमासीत्सह दिग्भिराप्लुतम् ।
स एक एवोर्वरितो महामुनि-
र्बभ्राम विक्षिप्य जटा जडान्धवत् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

स—सहित; क्ष्मा—पृथ्वी; अन्तरिक्षम्—तथा बाह्य अवकाश; स-दिवम्—स्वर्गलोकों सहित; स-भा-गणम्—समस्त स्वर्गिक पिंडों समेत; त्रै-लोक्यम्—तीनों लोकों; आसीत्—हो गया; सह—सहित; दिग्भिः—सारी दिशाएँ; आप्लुतम्—जल से मग्न; सः—वह; एकः—अकेला; एव—निस्सन्देह; उर्वरितः—बचे हुए; महा-मुनिः—महामुनि; बभ्राम—घूमता रहा; विक्षिप्य—छितराये; जटाः—अपनी जटाएँ; जड—मूक व्यक्ति; अन्ध—अन्धा व्यक्ति; वत्—सदृश।

जल ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग तथा स्वर्ग-क्षेत्र को आप्लावित कर दिया। निस्सन्देह, सारा ब्रह्माण्ड सभी दिशाओं में जलमग्न था और उसके सारे निवासियों में से एकमात्र मार्कण्डेय ही बचे थे। उनकी जटाएँ छितरा गई थीं और ये महामुनि जल में अकेले इधर-उधर घूम रहे थे मानो मूक तथा अंधे हों।

क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिङ्गिलै-
रुपद्रुतो वीचिनभस्वताहतः ।
तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो
न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

क्षुत्—भूख; तृट्—तथा प्यास से; परीतः—घिरे हुए; मकरैः—मकरों द्वारा; तिमिङ्गिलैः—तथा तिमिंगलों अर्थात् ह्वेल को भी खा जाने वाली विशाल मछली के द्वारा; उपद्रुतः—सताये हुए; वीचि—लहरों; नभस्वता—तथा वायुद्वारा; आहतः—

सताये हुए; तमसि—अंधकार में; अपारे—असीम; पतितः—गिरे हुए; भ्रमन्—घूमते हुए; दिशः—दिशाएँ; न वेद—ज्ञान नहीं रहा; खम्—आकाश; गाम्—पृथ्वी; च—तथा; परिश्रम-इषितः—थका हुआ।

भूख-प्यास से सताये, दैत्याकार मकरों तथा विमिंगिल मछलियों द्वारा हमला किये गये तथा वायु और लहरों से त्रस्त, वे उस अपार अंधकार में निरुद्देश्य घूमते रहे जिसमें वे गिर चुके थे। जब वे अत्यधिक थक गये तो उन्हें दिशाओं की सुधि न रही और वे आकाश तथा पृथ्वी में भेद नहीं कर पा रहे थे।

क्वचिन्मग्नो महावर्ते तरलैस्ताडितः क्वचित् ।
यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योन्यघातिभिः ॥ १७ ॥
क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् ।
क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; मग्नः—डूबते हुए; महा-आवर्ते—भारी भँवर में; तरलैः—लहरों से; ताडितः—थपेड़े खाकर; क्वचित्—कभी; यादोभिः—जल-जन्तुओं द्वारा; भक्ष्यते—खाये जाने से आशंकित; क्व अपि—कभी; स्वयम्—स्वयं; अन्योन्य—परस्पर; घातिभिः—आक्रमण करते हुए; क्वचित्—कभी; शोकम्—उदासी; क्वचित्—कभी; मोहम्—मोह; क्वचित्—कभी; दुःखम्—कष्ट; सुखम्—सुख; भयम्—भय; क्वचित्—कभी; मृत्युम्—मृत्यु; अवाप्नोति—अनुभव करता; व्याधि—रोग; आदिभिः—इत्यादि से; उत—भी; अर्दितः—पीड़ित।

कभी वे भारी भँवर में फँस जाते, कभी प्रबल लहरों के थपेड़े खाते, कभी जल-दैत्यों के परस्पर आक्रमण करने पर उनके द्वारा निगले जाने से आशंकित हो उठते। कभी उन्हें शोक, मोह, दुख, सुख या भय का अनुभव होता तो कभी उन्हें ऐसी भयानक बीमारी तथा पीड़ा का अनुभव होता जैसे कि वे मरे जा रहे हों।

अयुतायतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च ।
व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अयुत—दस हजार का; अयुत—दस हजार गुणा; वर्षाणाम्—वर्षों के; सहस्राणि—हजारों; शतानि—सैकड़ों; च—तथा; व्यतीयुः—बीत गये; भ्रमतः—विचरण करते हुए; तस्मिन्—उसमें; विष्णु-माया—भगवान् विष्णु की माया से; आवृत—आच्छादित; आत्मनः—मन।

मार्कण्डेय को उस जलप्लावन में इधर-उधर घूमते करोड़ों वर्ष बीत गये; उनका मन भगवान् विष्णु की माया से विमोहित था।

स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि द्विजः ।
न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; कदाचित्—एक बार; भ्रमन्—विचरण करते हुए; तस्मिन्—उस जल में; पृथिव्याः—पृथ्वी के; ककुदि—उठे स्थान पर; द्विजः—ब्राह्मण ने; न्यग्रोध-पोतम्—एक छोटा बरगद का पेड़; ददृशे—देखा; फल—फलों; पल्लव—तथा कोपलों से; शोभितम्—सुशोभित।

एक बार जल में विचरण करते हुए ब्राह्मण मार्कण्डेय ने एक छोटा टापू (द्वीप) देखा जिस पर एक छोटा बरगद का पेड़ खड़ा था जिसमें फल-फूल लगे थे।

प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् ।
शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

प्राक्-उत्तरस्याम्—उत्तर पूर्व की ओर; शाखायाम्—एक शाखा में; तस्य—उस वृक्ष की; अपि—निस्सन्देह; ददृशे—देखा; शिशुम्—एक शिशु को; शयानम्—लेटे हुए; पर्ण-पुटके—पत्ते के गर्त के भीतर; ग्रसन्तम्—निगलते हुए; प्रभया—उसके तेज से; तमः—अँधेरा।

उन्होंने उस वृक्ष की उत्तर-पूर्व की एक शाखा में एक पत्ते के भीतर एक शिशु को लेटे देखा। इस शिशु का तेज अंधकार को लील रहा था।

महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम् ।
कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनसं सुन्दरभ्रुवम् ॥ २२ ॥
श्वासैजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम् ।
विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥
पद्मगर्भारुणापाङ्गं हृद्यहासावलोकनम् ।
श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥ २४ ॥
चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम् ।
मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

महा-मरकत—महामरकत मणि की तरह; श्यामम्—गहरा नीला; श्रीमत्—सुन्दर; वदन-पङ्कजम्—जिसका कमल जैसा मुख; कम्बु—शंख जैसा; ग्रीवम्—गर्दन; महा—चौड़ा; उरस्कम्—छाती, वक्षस्थल; सु-नसम्—सुन्दर नाक वाली; सुन्दर-भ्रुवम्—सुन्दर भौंहों वाला; श्वास—उनकी श्वास से; एजत्—हिलती; अलक—बाल से; आभातम्—शानदार; कम्बु—शंख जैसा; श्री—सुन्दर; कर्ण—कान; दाडिमम्—अनार के फूल जैसा; विद्रुम—मूँगा जैसा; अधर—होंठों का; भासा—तेज से; ईषत्—कुछ-कुछ; शोणायित—लाल हुआ; सुधा—अमृत जैसी; स्मितम्—मुसकान; पद्म-गर्भ—कमल के कोश जैसा; अरुण—लाल; अपाङ्गम्—आँखों के कोर; हृद्य—मनोहर; हास—हँसी से युक्त; अवलोकनम्—मुखमण्डल; श्वास—उनकी श्वास से; एजत्—हिलाया गया; वलि—रेखाओं से; संविग्न—मोड़ी हुई; निम्न—गहरी; नाभि—नाभि से; दल—पत्ते की तरह; उदरम्—जिसका पेट; चारु—आकर्षक; अङ्गुलिभ्याम्—अंगुलियों वाले; पाणिभ्याम्—दोनों हाथों से; उन्नीय—उठाते हुए; चरण-अम्बुजम्—अपना चरणकमल; मुखे—मुँह में; निधाय—डाल कर; विप्र-इन्द्रः—ब्राह्मण-श्रेष्ठ, मार्कण्डेय; धयन्तम्—पीते हुए; वीक्ष्य—देख कर; विस्मितः—चकित।

बालक का गहरा नीला रंग निष्कलंक मरकत जैसा था; उसका कमल मुखमण्डल अपार सौंदर्य के कारण चमक रहा था और उसकी गर्दन में शंख जैसी रेखाएँ थीं। उसका

वक्षस्थल चौड़ा, नाक सुन्दर आकार वाली, भौंहे सुन्दर तथा अनार के फूलों जैसे सुन्दर कान थे जिसके भीतर के वलन शंख के घुमावों जैसे थे। उसकी आँखों के कोर कमल के कोश जैसे लाल रंग के थे और मूँगे जैसे होठों का तेज उसके मुखमण्डल की सुधामयी मोहनी मुसकान को लाल-लाल बना रहा था। जब वह साँस लेता, उसके सुन्दर बाल हिलते थे और गहरी नाभि उसके बरगद के पत्ते जैसे उदर की चमड़ी के हिलते वलनों से विकृत होती थी। वह ब्राह्मण-श्रेष्ठ आश्चर्य से उस बालक को देख रहा था, जो अपने एक चरणकमल को अपनी सुन्दर सुन्दर अंगुलियों से पकड़ कर अपने मुँह में डाल कर चूस रहा था।

तात्पर्य : यह शिशु स्वयं भगवान् था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार भगवान् कृष्ण को आश्चर्य हुआ, ''इतने भक्तगण मेरे चरणकमल के अमृत के लिए लालायित रहते हैं, अतएव मैं स्वयं उस अमृत का अनुभव क्यों न करूँ।'' इस तरह एक सामान्य बालक की तरह खेल रहे भगवान् नेअपना अँगूठा चूसना शुरू कर दिया।

तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा
प्रोत्फुल्लहृत्पौल्मविलोचनाम्बुजः ।
प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशङ्कितः
प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तत्-दर्शनात्—उस शिशु का दर्शन करने से; वीत—दूर हो गया; परिश्रमः—थकान; मुदा—हर्ष के कारण; प्रोत्फुल्ल—खिल उठा; हृत्-पद्म—हृदय का कमल; विलोचन-अम्बुजः—तथा उसकी कमल जैसी आँखें; प्रहृष्ट—खड़े हो गये; रोमा—शरीर के रोएँ; अद्भुत-भाव—इस अद्भुत रूप की पहचान के बारे में; शङ्कितः—शंकालु; प्रष्टुम्—पूछने के लिए; पुरः—आगे; तम्—उसके; प्रससार—पास गया; बालकम्—बालक के।

जैसे ही मार्कण्डेय ने बालक को देखा उनकी सारी थकान जाती रही। निस्सन्देह उनको इतनी अधिक प्रसन्नता हुई कि उनका हृदय तथा उनके नेत्र कमल की भाँति पूरी तरह प्रफुल्लित हो उठे और उन्हें रोमांच हो आया। इस बालक की अद्भुत पहचान के विषय में शंकित मुनि उसके पास पहुँचे।

तात्पर्य : मार्कण्डेय उस बालक से उसकी पहचान पूछना चाहते थे, इसीलिए वे उसके पास गये।

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः
सोऽन्तः शरीरं मशको यथाविशत् ।
तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो
यथा पुरामुह्यदतीव विस्मितः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

तावत्—उसी क्षण; शिशोः—शिशु का; वै—निस्सन्देह; श्वसितेन—श्वास लेने से; भार्गवः—भृगुवंशी; सः—वह; अन्तः शरीरम्—शरीर के भीतर; मशकः—मच्छर; यथा—जिस तरह; अविशत्—घुस गया; तत्र—वहाँ पर; अपि—निस्सन्देह; अदः—यह ब्रह्माण्ड; न्यस्तम्—रखा हुआ; अचष्ट—उसने देखा; कृत्स्नशः—समूचा; यथा—जिस तरह; पुरा—पहले; अमुह्यत्—विमोहित हो चुका था; अतीव—अत्यधिक; विस्मितः—चकित।

तभी उस शिशु ने श्वास ली जिससे मार्कण्डेय मच्छर की तरह उसके शरीर के भीतर खिंच गये। वहाँ पर ऋषि ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रलय के पूर्व की स्थिति में सुव्यवस्थित पाया। यह देख कर मार्कण्डेय अत्यधिक आश्चर्यचकित तथा मोहग्रस्त हो गए।

खं रोदसी भागणानद्रिसागरान्
द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान् ।
वनानि देशान्सरितः पुराकरान्
खेटान्व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥
महान्ति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ
कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ।
यत्किञ्चिदन्यद्व्यवहारकारणं
ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

खम्—आकाश; रोदसी—स्वर्ग तथा पृथ्वी; भा-गणान्—सारे तारों; अद्रि—पर्वत; सागरान्—तथा सागरों; द्वीपान्—बड़े-बड़े द्वीपों; स-वर्षान्—महाद्वीपों समेत; ककुभः—दिशाओं; सुर-असुरान्—सन्त भक्तों तथा असुरों; वनानि—जंगलों; देशान्—विविध देशों; सरितः—नदियों; पुर—नगरों; आकरान्—तथा खानों; खेटान्—खेतिहर गाँवों; व्रजान्—चरागाहों; आश्रम-वर्ण—विभिन्न आश्रमों तथा वर्णों; वृत्तयः—पेशों; महान्ति भूतानि—प्रकृति के मूल तत्त्वों; अथ—तथा; भौतिकानि—स्थूल रूपों को; असौ—उसने; कालम्—काल; च—तथा; नाना-युग-कल्प—विभिन्न युग तथा ब्रह्मा का दिन; कल्पनम्—नियामककारक; यत् किञ्चित्—जो कुछ भी; अन्यत्—दूसरा; व्यवहार-कारणम्—भौतिक जीवन में काम आने वाली वस्तु; ददर्श—देखा; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; सत्—सत्य; इव—मानो; अवभासितम्—प्रकट।

वहाँ पर मुनि ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखा—आकाश, स्वर्ग तथा पृथ्वी, तारे, पर्वत, सागर, द्वीप तथा महाद्वीप, हर दिशा में विस्तार, सन्त तथा आसुरी जीव, वन, देश, नदियाँ, नगर तथा खानें, खेतिहर गाँव तथा चरागाह, समाज के वर्ण तथा आश्रम। उन्होंने सृष्टि के मूल तत्त्वों तथा उनके गौण उत्पादों के साथ ही साक्षात् काल को देखा जो ब्रह्मा के दिनों में असंख्य युगों को नियमित करता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भौतिक जीवन में काम आने वाली अन्य सारी वस्तुएँ देखीं। उन्होंने अपने समक्ष यह सब देखा जो सत्य जैसा प्रतीत हो रहा था।

हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं
निजाश्रमं यत्र ऋषी अपश्यत ।
विश्वं विपश्यञ्छ्वसिताच्छिशोर्वै

बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

हिमालयम्—हिमालय पर्वत को; पुष्प-वहाम्—पुष्पभद्रा; च—तथा; ताम्—उस; नदीम्—नदी को; निज-आश्रमम्—अपनी कुटिया को; यत्र—जहाँ; ऋषी—दो ऋषि, नर तथा नारायण; अपश्यत—देखा था; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; विपश्यन्—देखते हुए; श्वसितात्—श्वास से; शिशोः—शिशु के; वै—निस्सन्देह; बहिः—बाहर; निरस्तः—निकाला गया; न्यपतत्—गिर पड़ा; लय-अब्धौ—प्रलय के सागर में।

उन्होंने अपने समक्ष हिमालय पर्वत, पुष्पभद्रा नदी तथा अपनी कुटिया देखी जहाँ उन्होंने नर-नारायण ऋषियों के दर्शन किये थे। तत्पश्चात् मार्कण्डेय द्वारा सम्पूर्ण विश्व के देखते-देखते, जब उस शिशु ने श्वास बाहर निकाली तो ऋषि उसके शरीर से बाहर धकेल दिए गए और प्रलय सागर में गिरा दिए गए।

तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं
वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ।
तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन
निरीक्षितोऽपाङ्गनिरीक्षणेन ॥ ३१ ॥
अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि ।
अभ्ययादतिसङ्क्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस जल में; पृथिव्याः—पृथ्वी का; ककुदि—उठे स्थान पर; प्ररूढम्—उगता हुआ; वटम्—बरगद का वृक्ष; च—तथा; तत्—उसके; पर्ण-पुटे—पत्ते के दोने में; शयानम्—लेटे हुए; तोकम्—बालक को; च—तथा; तत्—अपने; प्रेम—प्रेम की; सुधा—अमृत जैसी; स्मितेन—हँसी से; निरीक्षितः—देखा जाकर; अपाङ्ग—आँख के कोरों से; निरीक्षणेन—चितवन से; अथ—तब; तम्—उस; बालकम्—बालक को; वीक्ष्य—देख कर; नेत्राभ्याम्—अपनी आँखों से; धिष्ठितम्—रखते हुए; हृदि—हृदय के भीतर; अभ्ययात्—आगे दौड़ा; अति-सङ्क्लिष्टः—अत्यन्त क्षुब्ध; परिष्वक्तुम्—आलिंगन करने के लिए; अधोक्षजम्—भगवान् को।

उस विशाल सागर में उन्होंने छोटे-से द्वीप पर बरगद के वृक्ष को उगा हुआ और शिशु को पत्ते के भीतर लेटे हुए देखा। वह शिशु उनको अपनी आँखों की कोरों से प्रेम के अमृत से भरी हँसी से देख रहा था। मार्कण्डेय ने उसे अपनी आँखों के द्वारा अपने हृदय में कर लिया। अत्यन्त क्षुब्ध ऋषि भगवान् का आलिंगन करने दौड़े।

तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः ।
अन्तर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तावत्—तभी; सः—वह; भगवान्—भगवान्; साक्षात्—प्रत्यक्ष; योग-अधीशः—योगेश्वर; गुहा-शयः—समस्त जीवों के हृदयों में छिपे; अन्तर्दधे—अन्तर्धान हो गये; ऋषेः—ऋषि के समक्ष; सद्यः—सहसा; यथा—जिस तरह; ईहा—प्रयास द्वारा वस्तु; अनीश—अक्षम व्यक्ति द्वारा; निर्मिता—बनाई हुई।

तभी भगवान्, जोकि योगेश्वर हैं तथा हर एक के हृदय में छिपे रहते हैं, ऋषि की आँखों

से ओझल हो गये जिस तरह अक्षम व्यक्ति की सारी उपलब्धियाँ सहसा विलीन हो जाती हैं।

तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसम्प्लवः ।
तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तम्—उसके; अनु—पीछे; अथ—तब; वटः—बरगद का वृक्ष; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण, शौनक; सलिलम्—जल; लोक-सम्प्लवः—ब्रह्माण्ड का प्रलय; तिरोधायि—अदृश्य हो गये; क्षणात्—तुरन्त; अस्य—उसके सामने ही; स्व-आश्रमे—अपनी कुटिया में; पूर्व-वत्—पहले की तरह; स्थितः—उपस्थित था।

हे ब्राह्मण, भगवान् के अदृश्य हो जाने पर, वह बरगद का वृक्ष, अपार जल तथा ब्रह्माण्ड का प्रलय—सारे के सारे विलीन हो गये और क्षण-भर में मार्कण्डेय ने पहले की तरह अपने को अपनी कुटिया में पाया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''मार्कण्डेय ऋषि को भगवान् की मायाशक्ति के दर्शन'' शीर्षक नौवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।